और 'मुनिपुंगव' शब्द का प्रयोग तो वरांगचरितकार ने वरदत्त केवली-सहित सभी मुनियों के लिए किया है। देखिए—

शेषांश्च सर्वान्मुनिपुङ्गवांस्तांस्त्रिभिर्विशुद्धः क्रमशोऽभिवन्द्य।
एत्यादरात्केवलिपादमूलं सुखं निषद्येममपच्छदर्थम्॥ ३/३७॥

इसमें कहा गया है कि महाराज धर्मसेन ने पहले वरदत्त केवली को नमस्कार किया, पश्चात् शेष सभी मुनिपुंगवों का क्रमशः अभिवन्दन करके पुनः वरदत्त केवली के पादमूल में आकर बैठ गये और तत्त्वार्थ की जिज्ञासा प्रकट की।

'यहाँ शेष सब मुनिपुंगवों को' इस शब्दावली से स्पष्ट है कि जिन्हें पहले नमस्कार किया था, वे भी मुनिपुंगव थे और जिनकी बाद में वन्दना की वे भी मुनिपुंगव थे। अर्थात् इनसे बाहर कोई भी ऐसा मुनि शेष नहीं था, जिसे 'श्रमण' शब्द से अभिहित कर मुनिपुंगवों से भिन्न दिखलाने की जटासिंहनन्दी को आवश्यकता रही हो। राजा वरांग ने आहारदान भी इन्हीं वरदत्त केवली के समीप उपस्थित मुनिपुंगवों को दिया था। इसलिए उनमें सभी मुनियों का समावेश हो जाता है। फलस्वरूप 'श्रमण' शब्द से अभिहित करने के लिए कोई मुनि शेष रहता ही नहीं है। अतः वहाँ 'श्रवण' शब्द का ही प्रयोग युक्तिसंगत है, जो श्रावक के अर्थ में किया गया है। इस तरह अन्तरंग प्रमाण से ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि यापनीयपक्षी ग्रन्थलेखक ने जो 'श्रवण' शब्द के स्थान में 'श्रमण' शब्द मानकर उसे सचेलमुनि का वाचक बतलाया है, वह सर्वथा अप्रामाणिक है, मनगढ़ंत है।

हाँ, इसका वैकल्पिक पक्ष यह अवश्य हो सकता है कि वहाँ 'श्रमणार्जिका' शब्द ही हो, क्योंकि ग्रन्थ में अन्यत्र भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है किन्तु वहाँ 'श्रमणा' (स्त्रीलिंग) शब्द 'अर्जिका' का विशेषण है, जिसका अर्थ है 'तपस्विनी अर्जिका' या 'श्रमणमार्गी अर्जिका।' यथा—

क्षितीन्द्रपत्न्यः कमलायताक्ष्यो विचित्ररत्नप्रविभूषिताङ्ग्यः।
परीत्यभक्त्यार्पितचेतसस्ता नमः प्रकुर्वन्मुनये प्रहृष्टाः॥ २९/९२॥

ततो हि गत्वा श्रमणार्जिकानां समीपमभ्येत्य कृतोपचाराः।
विविक्तदेशे विगतानुरागा जहुर्वराङ्ग्यो वरभूषणानि॥ २९/९३॥

इनका अर्थ पूर्व में लिखा जा चुका है। भावार्थ यह है कि राजा वरांग की रानियों ने वरदत्त केवली को हर्षित होकर नमस्कार किया। पश्चात् श्रमणा (तपस्विनी) आर्यिकाओं के पास जाकर विनयोपचार किया। फिर एकान्त स्थान में जाकर अपने आभूषण त्याग दिये।

Scanned with OKEN Scanner